शिक्षक साहित्य ग्रन्थमाला - 4

पहली बार 1000
रवि प्रिंटर्स तेनाली.

मिलने का पता :
शिक्षक पब्लिशर्स,
नाजर पेट, तेनाली. S. R.

फिरदौसी

(तेलुगु से)

मूल कवि :

जि. जाषुवा

अनुवादक :

दुर्गानन्द

प्रकाशक

शिक्षक पब्लिशर्स,

विजयवाडा-तेनाली

 1954 दाम 1—0—0

अनुवादक का वक्तव्य

भाषा-वाहक का काम कठिन नहीं। हिंदी का तेलुगु में और तेलुगु का हिंदी में बहुत-कुछ अनुवाद किया जा सकता है। लेकिन कविता के बारे में अनुवाद की बात उठती है तो वह असल में भाषा का अनुवाद नहीं, बल्कि शैली का अनुवाद है। मूल-कवि किस शैली की किस सतह से उठ कर कह रहे हैं वे अपनी ध्वनि पर कितना दबाव देकर बोल रहे हैं और उनका चिंतन, ध्यान-शुचि-रुचि आदि कौन व्यञ्जन पकाने केलिये क्वथित होते जारहे हैं, इन सभी बातों से अनुवादक को भली भाँति परिचित होना पडता है। इसलिये महान कवियों की कृतियों का अनुवाद नहीं हो सकता। व्यक्तित्व हम रूपान्तरित कर के देख नहीं सकते। काव्य कवि का व्यक्तित्व है। फिर भी विश्व विजेतृ कृतित्व वाले जाषुवा का अनुवाद मैंने किया तो सचमुच साहस किया। जाषुवा की अनंत प्रतिभा तथा उनकी काव्य-गरिमा से सारी तेलुगु जनता के साथ मैं भी पुलकित हूँ। कई दिनों का यह लोभ किसी प्रकार भी मैं संवरण नहीं कर सका। हजारों गल्तियों के कलङ्क को भी उभरने न देने वाले उनके कलावैभव से आशिष पाकर मैंने यह काम किया है।

मैंने जाषुवा का ही काव्य क्यों लिया इसका कारण संक्षेप में यही है कि जाषुवा के पद्य केलिये तेलुगु में जितना स्थल चाहिये

हिंदी में भी उतना ही चाहिये कम नहीं। यही किसी काव्य की अनूद्य-योग्यता की निर्णायक कसौटी है। तेलुगु में कई रचनाएँ, जो स्वभाषा के आञ्चल की ओटमें सकुचाती इठलाती रहती हैं, अनुवाद में आते ही पांडुर होने लगती हैं—मौजूद हैं। केवल भाषा-निष्ठ सौंदर्यवाले काव्य अन्य भाषा में जाकर नयी हवा में हिल-मिल न पाते। विरला ही ऐसे काव्य पाये जाते हैं जो अन्य भाषओं केलिये भी जन्मते हैं। जाषुवा के बहुत से काव्य इसी श्रेणी के हैं। उन में सार्वभौमिकता है। उनके अनेक खण्ड-काव्यों की तरह फिरदौसी एक छोटे कलेबर का काव्य है। आकार में छोटा होने पर भी यह तेलुगु का प्रौढ तथा सजीव काव्य है। इस में कला की सारी शक्तियाँ एक अच्छे संतुलन में खप कर जीर्णित होगई हैं। जाषुवा के कृतित्व के विषय में भी यही बात घटती है। फारसीक कवि फिरदौसी के जीवन की दर्दनाक झांकी इतने मार्गिक ढंग पर इस काव्य में दिखाई गई है कि काव्य पढनेके बाद पाठक मर्माहत पीडा से तिल मिला जाता है। यह एक आक्रोशन भरा संगीत है जो कवि की ट्राजडी लेकर समाप्त होगया। असत्य-संध, कपटी, बादशाह को ललकारते हुए, आँसू का घूंट पी पीकर किसी कवि का इह-लीला समाप्तकर चला जाना मानों युग-यगों की दंभ संस्कृति पर मानवता की भयंकर चुनौती है। यह काव्य मानव जीवनका सूक्ष्म तम विश्लेषण है। जीवन और कला का अभङ्ग आत्मैक्य, इसमें पायाजाता है। संक्षेप में कहना हो तो " फिरदौसी " लघु देह का महा काव्य है। यही कारण है कि जाषुवा के समस्त काव्यों में से

फिरदौसी को ही चुनकर मैंने हिंदी-बद्ध किया। इस काव्य की रचना को रोचक बनाने केलिये कवि ने कुछ-कल्पित प्रसङ्ग भी जोड दिये। काव्य में जो स्थल भौगोलिक वास्तविकता से भिन्न हैं उनकेलिये जाषुवा ने फिरदौसी के व्यथा निरूपण केलिये कल्पित कह कर क्षमा प्रार्थना की।

अर्थ और जाति के किनारों वाले भयंकर सिन्धु में मंथन खाये हलाहल की ज्वाला जाषुवा का जीवन है और उस की निचली तहों से निकलनेवाला अमृत भाण्ड इनकी कविता है। जाषुवा लोकप्रिय कवि हैं। साठ साल के ये प्रौढ कलाकार आजकल अपनी जीवन-गाथा लिख रहे हैं।

तेलुगु की यह भारी गठरी हिंदी के आंगन तक आते आते पता नहीं, कितने मोती इस में से ढुलक गये, मैं नहीं जानता। गठरी तो पहुंची है, यही कुछ संतोष है। आगे विज्ञ पाठक ही जान लें। काव्य को यह रूप देने में हिन्दी प्रचारक विद्यालय (तेनाली) के प्रधानाध्यापक श्री बोयपाटि नागेश्वररावजी का बडा हाथ रहा है। उनको मैं हृदय-पूर्वक धन्यवाद देता हूँ

—दुर्गानंद "साहित्य रत्न'

अनुवादक के बारे में

श्री दुर्गानंद कोरे अनुवादक नहीं। ये तेलुगु के उदीयमान कवि और लेखक हैं। केवल जाषुवा के सामने ही अपने को अनुवादक पाते हैं। इन की कविताओं में साइन्सिजम का रूप स्पष्ट होता दिखाई दे रहा है, जो आजकल 'तेलुगु स्वतन्त्र' 'ढङ्का' जैसी पत्र-पत्रिकाओं में छप रही हैं। फिलहाल नभोवाणी से प्रसारित 'संगडि मनिषि' जैसी कविताओं में दार्शनिकता का हल्का स्वर भी सुनने में आया है। आश्चर्य की बात है "मानव जीवन बडा प्लाट खरीद कर भविष्य का कर्जदार हो गया" कहनेवाले प्रगतिशील युवक ने बडी सांत्वना के साथ इस इतिवृत्तात्मक काव्य को निभाया है। सचमुच हिन्दी साहित्य को इस काव्य से नया आकाश मिलेगा, ऐसी मेरी धारणा है।

तेनाली,
1-11-1954

—दोनेपूडि राजाराव 'साहित्यरत्न'
प्रशिक्षक,
तेनाली कालेज,
ते ना ली

फिरदौसी

हुआ था ओजस्वी नृपति गजनी का मुहमुद,
बुलाया सेना को भरत भुवि का ग्रास करने
भिगोया माता के मृदुल तन को रक्त ह्रद में
लुटाया रत्नों को त्रुटित कर सोमेश वपु को

मत्तगजों पर लादा उसने स्वर्ण-कणों को बोरी बांध
शत शत उष्ट्रों को पाया सुरुचिर हीरक मणियों से संपन्न
कुरुविंदों को तोला दृढतर वृष शकटों में भर अनमोल
नव अश्वों पर डाला अविरल वैदूर्यों का सुललित भार ।

गांग-जलों में धोकर खूनी तलवार
जीत की भेरी लेकर अष्टा दश बार
गुलामी का देकर दुस्सह भार
चला देश होकर वापस अनुदार ।

मोती गूंथे झिल मिल गया सौध आकाश चुम्बी
सोना चाँदी, द्रवित करके सींचँ दी कुडय पाली
फूली शोभा, नव रुपहली मसजिदों की निराली
गद्दी बैठा, नृपति उसकी राणियाँ हर्ष झूलीं।

टूटे भारत के बहु मंदिर
बने गजनी–पुर की मसजिदें सुंदर
आज की मसजिद फिर क्या रूप धरे
जाने कौन - धरा गर्भ या काल भले ही जाने।
जीती थी पहले भली विभवरमा, जो हिंदुओं की बनी,
माना आज सुखोत्कर्ष उसी ने म्लेच्छ भूपाल से
चूमी खङ्ग-कली उसी कुमति की, लोटी उसी की धरा
लक्ष्मी है यह झूठ की मनचली, मानों छलों की पली।

करने लगा वह निज राज्य रमा का शासन
ढेर लगाकर ही धन को पाया उसने आश्वासन
क्या मजाल, कोई अरि की पटु तलवार उठे
दाय मनों की असहनीय कटु दृष्टि की आंख पडे।

हस्ति-गृहों के गजदंतों पर उसने
लिखवाया विजयों का सुंदर इतिहास,
दिक्करियों के सोलह दाँतों के साथ
निज संख्या को होगी भिडने की आस।

वीर भटों की इक इक वीर कहानी
लिखवाई नीलक वर्णों से जिन पर खूब सुहानी

दे दीं तलवारें भेंट उन्हीं को डरवानी
उनके रण शौर्यों की ये हैं अटल निशानी ।

वेगवान् सेनापतियों को उसने—
उपहार दिया स्वर्ण दुकूलों का.
झन झन कंकण सुंदर गहनों का,
अंजलि भर कर उज्वल हीरों का ।

निज विजय कथा को नित्य शोभी बनाऊँ,
नरपति मन आया, स्वान्त में तृप्ति पालूँ,
कविवर फिरदौसी को बुलाया खुशी में,
मलयज छिढका यों, भूप बोला सभा में।

हे कवि ! तव कविता की उज्वल फुलवारी में,
सौध बनाओ कृति का मेरी सुंदर शाश्वत दुख-हारी
जिस मे हों मेरे पूर्वज अनुपम काव्य शरीरी,
पृथ्वी पर प्रकटें वे अनंत काल के अविकल प्राणी।

गर्भ धन्य है कवि जिस से जन्मा।
पति है अमृत कृति कवि से जो लेता।
आडंबर के आंचल पर जो जीता,
कवि को व्यर्थ-जीव-सा मन में लेता।

चतुराई जो स्रष्टा के कर कमलों में,
है फूटी वह कलमों में सुंदर कवि की।
सच ईश्वरता की प्रतिमूर्ति वही ।
पूज्यों में पूज्य वही इस जाग में ।

बीता जो क्षण के पहले
लौटा दे किस के हाथ ?
युग युग का बीता इतिहास
पद पद में देता कवि आभास ।

"तव कविता के पद्य पद्य पर
स्वर्ण रुपया कवि मैं देता
सौगंध खुदा की यह तो मानो
महा सभा के बीच में तुम क्या जानो"

भूपति के इस सत्य कथन पर
कवि के दिल में जोश भरा था
अवर्ण्य-सा कुछ हृद्गोचर-सा,
कल-कविता का स्रोत भरा था ।

चुने मधुर पद,
हिला हिलाकर फारस के भंडार ।
रत्नों का ढेर लगाया,
व्यंग्य वाच्य के वारिधि खोज
उजले उजले मोती लाये,
शिरीष-पुष्प-सम शय्या कोमल ।
सुललित मृदु पाक पकाया,
अलंकरण के व्यंजन में घोल ।

शिला-लेख सब खोद निकाले
भूपों के चिर सत्यों के साथ।
"शाह नामा" की कवि ने बेल लगाई।
साहित्य-गर्भ की थाह लगाई।

तत् कालीन साहित्य संसार में—
नहीं भाव जो दिल उनके न छूयें
नहीं औपम्य जो नेत्र उनके न झलकें
नहीं शब्द जो चित्र उनके न उतरें।

पृथ्वी-पालक भूपों का-सा कभी कभी
धीरों का सा भिखमंगों का-सा कभी कभी
सत् कवि को अगम्य क्या रूप जभी कभी
दुखी बना अनुपम-तोषी अभी अभी।

तेलुगू की कल कविता की कोमलता कवि ने पीली
परदेशी - काव्यों की शोभा हर ली, द्रविडों की शैली लेली
केवल रस परिपोषित सुंदर काव्य कला में सुधा स्रवंती घोली
समस्त वस्तु के दर्शन-सुख की डोला में हृदय कली भी झूली।

एक रात सुम शय्या पर निज घर में
लेटे थे कवि हिलते-डुलते अरमानों में
बने स्वप्न वे ही घुल घुल कर रस झरते
आँखें मुंद गईं पलकों में मधु भरते।

वामा कोई उन स्वप्नों में मादकता ले आई
उस युग के फारशीक यह रूपवित्त की कोई

लक्ष्मी थी वाणी उसकी स्नेह सुधा में सरसाई
लगी पूछने कविवर ! मेरी इच्छा होगी फल दाई ?

जवानी है मेरी यह, तव पदों में वितरिता,
गुलाबों का भोला मरिमल्ल जिसे है पलटता
बनूं क्या मैं तेरी चिर हृदय-तन्त्री, प्रणय की ?
सुनो प्यारे ! आया समय बनने काव्य-जननी।
मैं हूँ मुग्धा अंतःपुर की भोली
व्रीडा पट तोडे साहस में जो आई
क्या कह दूँ फारसीक कवि ! तेरे आगे
दिल की गाथा मधुर ओंठ मेरे भींगे।

कवि के अंगों में कंपन भर आया।
दिल में दुगुना उत्साह-सा कुछ छाया।
वामा ने हाथ धरा, कवि की ओर निहारा।
वक्षस्थल से वक्ष लगाया, मानों बाण घुभोया।
चौंक उठे कवि-वर उनका दिल क्यों घबराया।

कवि का मन था जो पहले क्लांति - विहीन
हृद्य - काव्य - रचना में जो था तल्लीन
वही हवा का दोलायित दीप बना
मोटी मछली का कंपित कमल बना।

नरके सुख - दुखों के आगे
चलने वाली परछाई स्वप्न यही समझो
काल चक्र के अलस गमन में
छिपने वाले चित्र कहाँ हैं ? चुन लो ?

उस विचित्र स्वप्नस्मृति में कवि ने रात बिता दी जब
सूरज ने फूँक उडादी पूर्वी गिरि पर कुंकुम धूली तब।
हिम कर सोया पश्चिम गिरि में मृत हो भस्मच्छवि में
तारा मंडल बस डूब चले फेनिल-से उस नभ में।

सुल्तानी - महलों पर बज उठा एक नगारा
आमंत्रित निनदों से गूंज उठी मसजिद सारी।
हय-शाला से हिला केश घोडे ने ललकारा,
कवि बैठे गृह प्रांगण के स्वर्णासन पर मन मारे ।

एक तभी फारशीक जो संभ्रम संकुल हो धाया
बोला—स्वर उस का गद् गद्, कंपित उसकी काया
कविवर! दौडो सुख का सुंदर हर्म्य तुम्हारा टूटा
कह कर आगे पत्र बढाया कवि-पत्नी का लिख भेजा।

"करचरणों की जीवित प्रतिमा
वर्षत्रय का लाल दुलारा
पुत्र नाम का पहला प्यारा
चला गया अब कौन सहारा"

हृदय थाम कर पत्र पढा तो
अंगों में दुख कष्ट ताप बढा ।
गुम शुम उस तूस नगर की ओर
शीघ्र चले तब चरण बढा ।

पुत्र प्रेम ने नोच नोच कर कविवर को खाया।
भोजन भी उनको हाय ! कभी भाया ?
समय पुरुष भी दिन दिनाकार हो आया।
भावुक - सा ढाढस भर उनको दे डाला।

गुज़रे दो वर्षों में जब पाया सुंदर पुत्री को
हर्षित हो उद्गार किया मन के रोचक भावों का,
विरचा काव्य अलौकिक रस में निद्रा सुख से त्यागी हो
पीत-पत्र सा गात्र बना तब रुधिरच्युति से पांडुर हो

युव कोकिल के मृदु कण्ठों के
कल कूजन का मर्म छिपाकर,
सुम शत के गंध गर्भ के
छेदक मारुत का जन्म बताकर
घन पटलों में छिपती बिज़ली की
लास्य-कला का अर्थ जताकर,
अंबुधि के फेनिल-शिशुओं के
अविरत क्रीडा भाव जमाकर,
मुग्ध मोहिनी सौंदर्य वार्धिनी

प्रकृति रमा से स्नेह बढाकर,
की फिरदौसी ने वह कविता
थी वह सर्वांग सुंदरी रस सरिता
त्रिंशत् वर्षों की यौवन लसिता।

इति कर कृति की कवि ने भूपति के पाये तब दर्शन
विवरण सुन दाढी पर रख हाथ किया कल हास का वर्षण
बोला, हे कवि ! भाव रसीले ! कल होगा तव कविता-का भाषण
विद्वानों की भूरि सभा में गाओ, काव्य सुनाओ कविकुल भूषण ।

संदेहों से क्षालित हो कवि तृप्त हुए ज्यों अंबुधि-तीर्ण
स्वर्ण संयोजित सद्यश की आशाओं से दिल था पूर्ण
स्वयंवरण के सभा-भवन में आती मुग्धा-सी सकुचाती को
उस काव्य- वधू को लिए कक्ष में आये कवि रंगस्थल को।

नृप-आश्रय से कुक्षिम्भर बन बैठे तुर्की पंडित त्यों
करि के वर्जित कपित्थ के फल बिना शान छोडे ज्यों
गर्व-भरी निज दंभ दृगों से अवलोकित कर यवन सभा
पैठे कवि, उस दढियल-दल की निरपेक्षित कर दृप्त-विभा।

अफगन पति मुँह में ले हल्की मुस्कान,
दरबार में आया, गति में निखरी पूरी शान
लगा हृदय में मानों कृति का वह नूतन वर था
बैठ गया निज-गद्दी पर मोद कणों को बरसा।

अनुमति ले कविवर मुद में सुना रहे वह सुंदर ग्रंथ
रंगों की लाली सूखी न अभी, जिन में ऐसे पद्य,
सुल्तानों के शासन-क्रम में आयी वह भी घटना
सबक्तजीन की वर्णित है जिस में हरिणी के प्रति करुणा।

कांप उठे यह हृदय कभी
खड़ा किया लौह धूलि विस्फोटक-युद्ध
पुलकित हो गात्र तभी
दिखा दिया खल राज्यों का कलुष खिलौना
मन हो आनंद - विभोर
दर्शाया मोहिनियों के नेत्राञ्चल का जादू
करुणा-पूर बहे नेत्रों में
पेश किया दीन गलित जीवन-चित्र
हिला चुका दिल दरबारी कवियों का—
मद मैत्री का वह सुललित-विन्यास
अश्वप्लुत के सम पद्यों का गमन विलास
रस शैली, भाव शबलता का आभास।

यवन सभा पर कवि ने रोब जमाया
निर्निमेष नेत्रों का बुध मंडल शर्माया
अङ्गों में पुलकांकुर झट भर आया
पल-भर न साँस लेने का अवसर आया।

राज-सी छवि में कवि ने चकित किया शाही दरबार
मास त्रय ग्रंथ सुनाकर लौट चले निज गृह की ओर,
फलतः प्रभु ने भेजा कवि को राजत मुद्रा भार
फिरा वचन से विद्वानों ने क्या ज्ञान भरा भरपूर।

कवि वर फिरदौसी के दिल में—
मानों पर्वत अनगिन पिघल चले,
वारिधि-चय आँसू में छलक पड़े,

समस्त लोक निराकार-से झलक पड़े,
अगाध-कूप के पङ्किल जल उछल पड़े,
विषाद मेघ के तमःपुञ्ज कुछ नज़र पड़े,
दुख-ज्वाला के दाहक कण तब भभक ऊठे।

कविवर ने वीर भटों को वह धन
लौटाकर उमडे दुखों के बीच
निराशा - घन मानों मूर्ती-भूत
भेजा पत्र एक भूपति के पास।

"नकली बिजली दीपों के आधार
बना लिया मैंने आशा का एक महल विस्तार
ढहा नरक में कर मुझ को वह धिक्कार
वृथा-आयास की रेखा-सा खड़ा हुआ मैं इस संसार।

"मनुज भुक्ति का कण-कंण जो देते निज करवालों को
हाय छुवा मम कविता ने शिला हृदय उन सुल्तानों को
यही पाप मेरे सिर अब नाच उठा सत्य छिपे कहाँ?
स्वयं कृतैक दोष-दग्ध-धन मुझको वह मिले कहाँ?

"इस लेखनी का रसहीन मषी-पङ्क
हाय! बचा विषाद गेय लिखने अब निश्शंक
चला शिथिल गात्र यह जरा भूत के अंक

बदले तीस वर्ष सेवा के अकलंक
निराशा के बाष्प मिले ये फल-से रंक।

"पद्य-पद्य पर बूंद-बूंद मैंने शोणित की दे दी
असत्य-सन्ध को कुलीन जानकर काव्य सृष्टि मैंने कर दी।
जाना मैंने क्या, पूज्य भूप मृषा वचन बोलेगा ?
सच क्या जाना, कविता ऋण सुल्तान नहीं देगा ?

"कसम खाकर भी मक्का की, क्या किया सुल्तान ?
चुकाना चाहते क्यों ? रजत-धन से हेम कृति का मोल ?
हे कपट प्रभो ! तुमसे पूजित अल्लाह क्या प्रसन्न होवेगा
भूप सुनो इस जग में पुरुष वही, वचन नहीं जो बदलेगा।

"यशश्चंद्रिका व्यापक सुन्दर सौध बनाकर तुमको
बना दिया दीर्घायु प्रभो ! मैंने तब अन्वय वल्ली को
संध्या मेरे सुख की आयी, रिक्त पाणि मैं अंधकार में जाऊँ
प्रलय नृत्य कर लूं, या भयद खेद के तामिस्त्रिक वन में धाऊँ।

"गुलाब के जल में मैंने लोभी को नहलाया।
वंचित हूँ, नकली जरियों से स्वर्ण कभी आया ?
इस अखंड पृथ्वी-मंडल में यवनों के निष्ठुर नाथ !
सिर पर मैंने चढ़ा लिये चिरविषाद के ज्वाला खण्ड।

"अराम अभी लूँगा कब्रों में गुज़रे भूपतियों के संग
तीस वर्ष सेवा के श्रम से थका हृदय मेरा निस्सङ्ग
निष्कलङ्क अब मनोशांति का मार्ग मुझे क्या दिखता
चलो मिली कपटी ! तुमको खिली-फली मेरी कविता।"

लाल किये मदिरा की घूर्णिल आँखों को, पत्र पढा,
कन्ठदघ्न क्रोधाकृति में सुल्तान तभी आहत व्याघ्र बना
उठकर दे दी आज्ञा उसने सेनानी को शीघ्र बुला,
करो कतल फिरदौसी को, क्षार करो उसकी देह जला

"सुषमा शोभित तव वंशश्री का मान घटाकर हाय !
फिरदौसी के पद्य भला अब व्यक्त हुए कुछ और,
श्वेत मल्लिका सुम में घुसकर मादक षट्पद वृंद
असितच्छवि का लेप करे कब पंख खिलाकर तुच्छ ।

"तृण हो पण हो प्रेम से दिया तो क्या नहीं स्वीकार
भला-बुरा क्या कहता वह फारसीक प्रभु को कर न्यक्कार
कौन नहीं कर सकता इसके सम यह काव्य-प्रलाप
कई भाँति वे बोल उठे तब खुशामदी थोथे पंडित।"

कवि का जीवन लेने बैठा प्रभु का पाप घड़ा क्या फूटा ?
सत्य-वचन से दूर पड़ा वह अति कृतघ्नतम रक्त पिपासू,
आशा हति से क्षोभित कवि का शोणित धारा-पात
अमङ्गलों का हेतु बताकर दुखित हैं कुछ धर्मपरायण।

बरसाया कवि ने राजा के सिर कर्पूर
बिखेरा प्रभु ने कवि के सिर अङ्गार
कहते कुछ, पडे बिचारे के सिर बहु पाप
प्रभु ने आप भी कमा लिया कब, क्या पुण्य ?

सरस कवि-हृदयों का एक पुजारी
अति विह्वल हो दौड़ा कवि के पास
मुहमद प्रभु की प्राण-हारिणी आज्ञा
शीघ्र सुनाई, कुंठित कर उनकी आस

सुना ध्यान से कवि ने षष्ठि सहस्र जो अपने पद्य
कैसे वे गला काटने बने अस्त्र-से स्वयं अवद्य
उनके मृदु वदन-कमल में फूटी हल्की मुस्कान,
झलक पड़ा संशय दिल में ऊपर है क्या भगवान ?

"कृति ने क्रूर-व्याघ्र सम दृढता मेरी हर ली
शोषित अस्थि पिंजडे में अटकी यह प्राण-कली भोली
जीवन्मृत इस वृद्ध गात्र को भूप खड्ग चख लेगा क्या !
स्वाद मिलेगा इससे उसका परिभव ताप मिटेगा क्या !

"रत्नों की लालच में जलनिधि के बीच
लगा-लगाकर गोता मैं थका पड़ा
पाया मैंने आखिर क्या भाग्य - विहीन
मुह खोल मुझे वह खाने आज खड़ा।"

मसजिद् के कुछ भाग पर इसी प्रकार
कवि पुंगव ने लिखे पद्य जो मलिनाकार
देख-देख भक्तों का दिल है बेज़ार
पौ फटते नमाज पढ़ते जो आते वारंवार।

फिरदौसी

द्वितीय - सर्ग

सूर्य बिंब धीरे डूबा, पडा पुराना पृथ्वी अम्बर द्वार
घात लगाये बैठी अंधियारी ने दिया तारका दीप,
दुर्भर बाधा पीडित ये कवि पडे निराशा के बीच
लिया मार्ग उन भीकर गहनों का प्रिय पत्नी के साथ

आसमान पर घूमे बादल काले बन वन भरपूर
भूदेवी को स्नान कराने मानों घंटी गूंज उठी
शीत - वात के झोंके खाकर ठिठुर पडे जो पक्षी गण
पंख बिछाकर बच्चों पर हैं निज नीडों में सुप्त पडे।

प्रिय पत्नी औ पुत्री को लख वन में पैदल चलते
कविवर का हृदय - कमल तडप उठा नेत्रों में जल भरते
दुख का कारण उस राजाधम को मानों आँख दिखाती
गर्भ धारिणी घटा - राशि तब गर्ज उठी पट्ठ दांत चबाती ।

छोटी मोटी बूँदें टपकीं
नतु कुंभ वृष्टि वह बरस पडी
गर्जन का तो हुंकार भरा
नतु अशनि पात का लेश पडा
विद्युल्लतिका बहु चमक उठी
नतु नेत्र - रोध कुछ बीच पडा ।
पवनांकुर कुल दुलक पडे
नतु झंझा की वह भनक पडी

अति शीघ्र गमन से नभ में छाकर
जोर - शोर से गरज गरज कर
इधर उधर कुछ दौड-धूप कर
छंट गया बादल उन पर करुणा कर।

खिल खिल पडते नभ में छाये नक्षत्रों के सुरुचिर दीप
अर्ध-रात्र वह जिस में हिंसक व्याघ्र सभी निज हिंसा छोड
कुंज कुंज में खुर्राटा ले पडे हुये, तब पैर जमाये
तमः पुंज और तमाल द्रुम की द्वैध-नीति की प्रभुता छाई।

उस अर्ध निशा के भीकर वन में
चलते उस कवि कुटुंब की हालत देख

जगदीश्वर था करता उसकी रक्षा
तारा गण के दिव्य नेत्र-अम्बुज खोल।

नदी-नदों को वन्य मृगों को गिर- गह्वर के पाषाणों को
पार किया ज्यों विपनावलि को श्वेत पडा त्यों पूर्वी भाग
मलय पवन के मंद गमन से पुलकित है कवि का मन
एक जगह पर बैठ लगे गाने जगपति के गीत महान।

महावृक्ष को बीज में भरकर
सृष्टि का जादू खेलने वाले !
उदर दरी में शिशु को देकर
नव मासांत में प्राण फूंकने वाले !
सद्भक्तों को दर्शन भी देकर
अपना पता न देने वाले !
विकसन के पहले कुसमों को
तरह तरह से रंगाने वाले,

सजा सजा कर भूमि बनाकर
अनुभव करने की आज्ञा देकर
खुद बसने का स्थान भी खोकर
रहनेवाले ! नित्य स्थिति वाले !
भर पेट हमें जन्माने वाले !

पूर्वी गिरि सानु तटों ने कुंकुम पंक लगाया तन में
पंकज-पति ने स्वर्ण-पाद फैलाये उस नभ में
निशानाथ अपने मृग से चढ़कर चरमाचल के शृंग
प्रभाहीन हो चला गया तो अंधकार का कौआ रोया।

संध्या की आरक्त झरी में तिरकर
आये उस दिन कर मंडल में,
षोडश दिन कर सुधा - पान कर
खिलते विधु की स्मिति - लहरी में,
पुष्प वनों का चुंबन कर कर
खेल मचाती पवनाङकुर - वीची में
काले बादल परदों में छिप
धावित उस चल-चपला में
लेट मजे में ब्रह्मांडों को
हँसी - खुशी में बहने वाले!
बिना देर के आजा प्रभुवर!
हृदय चीर कर पूजूँ मेरे प्राण!

दिखा मुझे उस पक्षि-नीड को जो पवनांकुर में झूला
बता दिया पहले तुमने अपनी कृति का एक नमूना
धन्य प्रभो! मैं तव गाना जो गिर-घन में था गूंज उठा
पुलकायित हूँ सुन फिर भी अर्थ, स्वरों का क्या जाना।

कल कल करती बहती तटिनी थके बिना वह चलती ।
छप छप करती तरंगावलि में तूने गुदगुदी भर दी ।
बुद् बुद् फेनिल नृत्य देख दिल बहलाये हँसता क्यों
मेरी नति पर तनिक प्रेम भी दिख लाया कब, क्यों ?

फूल काढ मधु-मञ्जरियों में तूने लता सजाई,
मुकुलित कर उन पत्रों को सुख - सुषुप्ति में तूने सुलाई
झडते उन वृद्ध-सुमों को देख दया से अस्रु बहाये
अपनी उस गीली आँख में पृथु ब्रह्माण्ड भिगोये।

उस सुप्त-व्याघ्र की वदन-गुफा में हाय ! जन्तु ! बेचारे
बन कर भोजन आज गये, फिर कल का भोजन कौन बने,
किन किन कुञ्ज-निकुञ्जों में पडे हुए सुध-बुध वे खोये
समझ - बूझ कर भी तुम चुप रहते क्यों दिल तरसाये।

बिना पलक मारे जगते मेरे सङ्ग, रहे प्रभु निशि में
तव किसलय - नेत्र की लाली छाई पूर्वी दिग्-तट में
मैं निर्धन क्या देता तुम को फिर भी भेंट चढाऊँ तन की
हे परम पिता ! आओ सुख से शय्या पर लेटो मन की।

मुझ-से कोटि कोटि मनुजों को तूने
बना बना कर छोडा इस मिट्टी कण से
मुझे छोड फिर भी साँस आराम की तू नहीं लेता
कैसे हे प्रभु ! तेरा ऋण चुकता मैं कर सकता

एक दिवस था जब रमणी स्वप्न-लोक से एक आई
मुझे ढकेल कर नग-शिखरों से झटपट वह चल धाई
वही दृश्य अब म्लेच्छ भूप को गाथा में मिश्रित कर डाली
दिया दिखाया प्रभुवर ! तूने आँख तभी तो खोली।

यह वसुधा तेरी करुणा में हिंदोल रागिणी गाती
भला-बुरा कुछ जग का न सोच अपने में पैठी जाती
हे देव देव ! यह क्या विराग ? तू क्रोधित यदि हो जाता
रवि इस ब्रह्माण्ड-मार्ग पर क्या चलता ! प्रभात फिर क्या होता !

तेरा अकलुष - पाणि कमल चुपके क्या लिख कर जाता
प्रकृति-वस्तु जाल पर शाम-सुबह क्या लिख कर जाता
कभी कभी पढता उसको, पर समझ में मेरी कब, क्या, आया
अल्प-ज्ञानी प्राणी मुझ को प्रभुवर ! क्यों तूने बनाया।

वसुधा के वस्तु-चयों पर यह सविता
शाम-सुबह को स्वर्ण नीर का लेप लगाता
यदि तू क्रुद्ध अचानक हो जाता
कल-परसों का-सा प्रभात आज क्यों होता।

ताम्र चूड के इस परुष कंठ में सूरज रात को सोया क्या,
पूर्वी-तट वे बने मनोहर इस टेढे स्वर का मर्म भला क्या,
पहिचानो कह कर मंद-त्वरा में सावधान कर चले गये
उषा-राणि के चञ्चल-पुत्रक वायु नाम के परिमल पोषक।

रजनी के अंतिम ताराक्षर में समाप्त जो तेरा लेख
उसका कागज बन खुलते इस आसमान में आधा मुख
छिपा छिपा कर क्यों हँसता प्रभु ! उन पन्नों में मेरी गतियाँ
पचा पचाकर कैसे लिखलीं, मेरा मन है हाय अधीर,

कल कल कूजन विहगों को दे अञ्जलि भर कर फूलों से
उषा - वधू यह खडी देखती सुम पराग छाया नभ में
नैसर्गिक इस पूजा-विधि से प्रभुवर ! प्रसन्न तू क्या होवेगा !
दिल की कलियाँ ढेर लगाडूँ, कह दे मेरी नति पर सोवेगा।

इस चपल मेघ की शय्या पर पश्चिम के
शिशु हिमांशु सोया सुध खो कर के
उस ताल-नीर पर बना बना कर झूला
लोरी गा उसे सुलाता मुझ को क्यों भूला !

ललक-भरे इन मेघों से दिल ललचाये मुँह खोल
ये सीप खडे इन में ठहरे स्वाति कणों ने मणि बन अनमोल
वारिधि मंदिर खूब सजाया, तेरी इस लीला पर हे देव।
चकित हुआ मैं चला रहा हूँ नमस्कार ले ले हे नाथ।

लगा श्रृङ्खला तेरी शरण में धावित इन दीन दृगों को
रोक खडी ये भूधर पंक्तियाँ टकराये निज श्रृङ्ग चयों को
गह्वर के इस तमो-गर्भ में हे प्रिय पद-मुद्रा तेरी
कभी कभी देख न पाता लाज बचा प्रभुवर मेरी।

कान हिलाकर क्या कहता यह दाँत निकला मत्तकरि
सुख ये अस्थिर कह धमकाता क्या अलि कुल को यह मत्तकरि
जड-चेतन इस स्थिर-अस्थिर चल जग का पाठ पढाने क्या
निकट जलाशय में नव बुद् बुद् बन कर बिगडे फिर क्या।

मक्खी भी डर जाती है भिन्नाने इस स्थल में
सुप्रसन्नता - शांति बडी पुष्पित होती इस स्थल में
ये तेरे प्रिय भक्तों को योग्य बने हे जगदीश
मुख तो कुछ इधर फेर ! अन्य यहाँ क्या निखिलेश।

पाँचों भूतों में जो परिप्लावित
तव जो सत्ता अनंतता में अव-भासित
शरण वही मुझ को वज्रों का कवच वही
आधि-व्याधि का ख्याल मुझे तनिक नहीं।

अधोमुख उर्ध्व पृष्ठ हो कर ये पहाड के झरने
सूखे नद को वाह !झणों में लगे आप भरने
बने भँवर भी हाय ! पांथ के प्राण निकाल चुराने
तेरी कविता चिद्विलास। अतिरोचक है अब सुनने।

क्या हाथ में यह इन्द्रचाप नभ में बांध निशाना
सूरज क्यों अब छिपता घन में क्या वह कुछ हत्यारा
क्या कसूर कर जग में भाग गया वह बेचारा
भूमि-भुवन-जल क्या रहता फिर तू बनता यदि आग-बबूला।

खुशी खुशी में तूने घुमाया क्षमानामक यह लट्टू
यह भ्रमण कभी का अभी बन्द क्यों हो यह तुझ पर लट्टू
अगर बंद होता फिर तो लोक वृत्त का पालन कैसा ।
प्रभुवर ! किस ओर गिरेगा फल होगा तब कैसा ।

फिरदौसी

तृतीय - सर्ग

एवं विधि कवि ने कुछ क्षण तक
सृष्टि स्थिति का, प्रभु सत्ता का
गीत विनिर्मल गाया भर सक
कल कविता का, सुरुचिर धारा का ।

पश्चिम में जब डूबा दिनकर
पग पग में जो भय खाती गलकर
उन ललनाओं को गोद में लेकर
कविवर निकले दीर्घ मार्ग पर।

आसपास सुनकर वे अरि अश्वों के खुर का नाद
खिसक चले झट निकट स्थित गिरिवर के भूर्जवनों के बीच
मदकरियों के हरिकिरियों के विहरण से जो अनुदार
उन अपमार्गों में अचल-पथों में भाग गये कविवर दूर ।

दिनकर डूबा, व्याघ्र घाट पर आया
अपनी डाढ वराह ने पैनी कर डाली
आसमान डूबा, वसुधा भी डूबी,
अंधकार वारिधि में सब डूबे।

दिक्‌वाट पाटक हिंस्रक
सिंह-गर्जनों से घबडाकर,
ताल वनों में ताडी पीकर
घुर घुर करते ऋक्षों से डरकर
असह नीय कुछ क्षुद्र मृगों की
कूकू ध्वनि से पुलकित होकर
उल्का भूत के मायिक - दीप से
जन पद नैकट्य की आशा भर कर,

नीवार धान्य को प्रेम चबाती
मूषक दंतज ध्वनि से चौंक कर
चलते उन पांथ जनों को सहमाये
सूखे पत्ते ने भी हिल कर डांट बताई।

डर के मारे उस वन के सारे
भूरुज दीखे मानों अरि ताक में बैठे

पत्नी - पुत्री को गोद में लेके
निकले कविवर दिल को थामे।

उन तीन जनों को वन में चलते
निषाद एक ने सरभस देखा
उस का दिल था करुणा-रस से गीला
मृदु वचनों से उसका मुँह था भोला।

किधर कहाँ कहते डर का कारण आप मिटाते
धनु को हाथ में ले कुछ बाँस के टुकडे झट नोक बनाते
निसर्ग तेज निज मुख से फेंकते मौर्वी की टंकार बढाते
सघन घनों से पार कराया कवि को आगे पैर बढाते।

उदयाचल पहले भस्म चूर्ण की रेणु बना
कुछ लाली लेकर फिर हेम द्राव बना
उसकी छवि में घुलता अरुणोत्पल की कोर बना
प्रभात वह रंग बदलता गिरगिट का चर्म बना।

तब फारस की सीमा कुछ नज़र आई
भास्कर ने पूर्वी दिग् में अपनी आभा चमकाई
हाथ जोड वह बोला कवि से, भक्ति-भावना लहराई
बिदा मुझे दे दो कविवर ! तुम ने मुझ पर करुणा दौडाई।

चिता दिया उसने कवि को—
उस ओर न जाओ कविवर।
रवि किरणों से वह जो दिखती
जलपूर नहीं मृग तृष्णा समझो
मरु भूमि बड़ी तुम मार्ग न भटको।

उस पहाड की गोदी में एक ताल नज़र आता सुंदर
भूख लगे तो नाश्ता करना कुछ विराम लेलो सुंदर,
देखो यह, दृष्टि पथों में आते उन दृति चयों को
तोड-ताडकर भूमि गिराते चलते उन साल द्रुमों को।

दो कदम बढो आगे मालिक! अपनी दाईं ओर जरा
उस तडाग के तट से होकर जाना पथ एक बडा
वहीं हमारी कौम की प्रिय बस्ती कुछ ध्यान धरो
कुटियाँ गिरि में ऐसी मानों पृथ्वी स्तन में पुलक खडे।

इन कुंज निकुंजों में आँख पसारो
व्याघ्री बच्चों को निर्भय व्याती
इन जलपूरों में प्रभुवर देखो
प्रसूत करिणी कुछ देर नहाती
इस भूधर-तट पर अर्ध निशा में
भूत पंक्तियाँ खेल मचाती
इस देवदार वन में कविवर
पेट्ट अजगर मस्त पडे सोते

इसी जगह दिन-दहाडे रहमार
जीते नित्य पथिकों को लूटमार
दुनिया कहती यह बन का सुंदर नक्शा
सचमुच ब्रह्म सृष्टि पें यह विचित्र विपदों का अड्डा।

उस मक्का को जाने वाले अरबी मुल्लाओं के मार्ग वे ही
जो इस्लामी मत मे पूजित देश-विदेशों में मशहूर
उस पहाड की चोटी चढकर जो देखेगा आँख पसार
आगे उसके कांधहार-सौधों की शोभा खिलती रत्न बिखेर।

यह देखो चीलों के व्योमांचल में उडते झुंड
मानों इधर-उधर भटके वे जलदों के काले खंड
उस ओर नदी के सिकता स्थल में वे ही फारस के कब्रस्तान
वहाँ मिलेगा अस्थिचयों का मांस गंध का लघ आभास।

पंक्ति बांध लटका करते ये देखो पक्व फलों के गुच्छ
मधु च्छत्र-से ललचाते उन खर्जूरों के वन में स्वच्छ
घूम घाम कर उष्ट्र चराते फारशीक लोगों की भीड
देखो कुछ अनति दूर में फिरती मग मग को छोड।

उधर शाद्वलों में लघुतुषार कण झरते चरते
निकटस्थित द्राक्षा फल का मधु सौरभ भरते भरते
वे समीर सुख क्यों नहीं देते नभ में बहते बहते
कुसुमित तरु की छाया में ठहरा दिल को ठंडा करते करते।

नये नये उगते छत्रक से - उस मरु स्थली के तल में
उत्तर की ओर निहारो बैठे अब जो तंबू गाढ़े
मोती बेचते फिरनेवाले अरबी वैश्य वेही, समझो
तर्बूजों के वृक्ष कांड में पड़े उष्ट्र उनके, यह देखो ।

रेगिस्तान के उन सैकत तीरों पर
गर्मी के लगते ही फट बच्चे बन जो निकले
उष्ट्र पक्षियों के उन अंडों से कुंभ बनाकर
काल बिताते उष्ट्र क्षीर ही स्तन्य-सा पीकर

कच्ची हल्दी की-सी देहयष्टि की कांति तुम्हारी
सुंदर समतल फाल पट्टिका भाग तुम्हारा
आकार-प्रकारों से ऐसा होता कुछ भान
कुछ भी हो तुम फारशीक ठीक यही पहिचान।

इन कोमल वनिताओं के साथ
इन गिरि संकुल वन्य मृगों के बीच
इस भाँति के कटु कष्टों से जूझ
वृद्ध प्रभो ! तुम क्यों थकते मनमार

परदेशी समझ तुम्हें समझाया इतनी देर
गलती कुछ हो तो फिर भी माफ बताओ धीर
चलो चलो अब सांझ हुई देखो यह तम घोल
कह उसने बंद किया अपना सुललित मृदु बोल ।

उसके मृदु-वचनों की चतुराई
विनय-नम्र भावों की गहराई

परमार्थ पाठ की अनुपम पंडिताई
शरीर-शोभा, भुज मांसलता की सुघराई
सोच सोच कवि ने दिल में आनंद-झरी बहलाई।

गले लगाकर कविकर बोले—
आनंद-बाष्प मृदु वर्षण में
पीयूष सिक्त मधु आकर्षण में
गद्गद् - स्वर कुंठित संयोजन में
दैन्य-भरे नैसर्गिक मृदु भाषण में।

यह नर जग में नाशकरी जो पाप गढाता
वसुधा पर वह भार-रूप हो नित्य दुखाता
भाई! तुम को देख मुझे ऐसा व्यक्त अचानक होता
ईश्वर का कोप-ताप तुम जैसे से डरकर खुद न जलाता।

देखो मेरे तन की शक्ति तथा कविता का स्वर्णिल कोष
भूमीपति एक छली ने छीन किया वध करने का सोच
मेरी गाथा सुन करुणा से बहता पत्थर का दिल
तव मन तो फिर नव नूतन-सम पहले पिघला हालत देख।

मुझे प्राप्त अब यह देखो
पके बाल वाला यह सिर
क्षीण हुआ यह नेत्रों का दृग
कृश पांडुर, भारी देह
षष्ठि वर्ष ऊपर की यह उम्र।
भाई वह बुढियाँ मेरी बीबी
देखो यह युवती मेरी पुत्री
इन सुम सम कोमलियों को छोडे
प्राण नहीं जाते ये नटखट भी रूठे।

प्रकृति के इस रहो-अभ्र में कौंद ज्योति ज्यों जाती
कभी कभी आभासित हो ईश्वर-लीला ढाढस दे जाती
सुख के जिस महा मार्ग पर चले गये वे अविमल-प्राणी
चला चलूँ मैं भी अब इस गलित देह से लेकर छुट्टी।

आभारी मैं आजन्म तुम्हारा
बिदा मुझे देदो पूज्य निषाद।
कह कविवर बढा चरण युग
चले सबाष्प हो स्वजनों के साथ।

दृष्टि पथों में जब तक आई
वनचर ने देखी उन की छाया
फिर विषाद से निज गृह जाकर
कवि के दुर्भाग्य की याद में रोया।

फिरदौसी

चतुर्थ सर्ग

वहाँ गजनी-पुर की हालत फिर क्या
कर में नंगी तलवार लिये
कुपित मुखी हो अश्वों पर चढ
निकले भटगण कवि की खोज में ।

गरीब एक का गला काटने
आधिक दल का शोर मचा क्या !
राज भटों की भीड ने आकर
कवि का शून्य-निकेतन घेरा क्या !

" इस सौध में रह कर कतिपय क्षण पहले
अभी चले कविवर " यह पौरों के कहते सुन
सेनानी ने चिंतित हो नाना दिग में सेना भेजी
उसकी भ्रू तलवार-सी नाची, साँसें अग्नि कणों-सी सूझीं ।

अश्व खुरों की संकुल रजने अंबरतल को आ घेरा
भट-गण ने फिर बस्ती-जंगल, नदी-नाल सब छान डाला
कविवर का कुछ पता न पाकर राज-भीतसे मुँह लटकाये ।
निजपुर की ओर बढे वे मन में दुख की आग लगाये ।

ईश्वर का कवि ने जहाँ किया गुण गान
पता नहीं, अरिदल की नजरों में वह स्थान
पडा नहीं होगा, चिढ कर वे अपना प्रस्थान
अपमार्गों से कर चले गये वापस अनजान ।

" दीन हीन शश को जो घर में आया
खो देकर कर से बैठे यों भय भूले,
प्रभु को अवनति देकर खुश होने वाले
देखो अपनी हालत फिर बदमाशो ! "

कह कर प्रभु ने उन वीर भटों को
रण में जिन का खून बहा अब तक,
बंद किया झट कारागृह में
कृतज्ञता की प्रभु से आशा कब तक ।

' फिरदौसी को अभय गिरा जो देता
झूठ नहीं, दुश्मन का-सा मेरा उस से नाता
कह उसने अपने दिल को कर छोटा
सामंतों के देश देश में ढिंढोरा पीटा ।

' शाहनामा ' ग्रंथरत्न को लेकर पृथ्वी-पति आज
कृतिपति बन भाया शाश्वत यश किरीट सिर पर साज
इस काव्य ग्लानि से दग्ध हुए जाते जो दिन-रात
उन वृद्ध महा कवि का कंठ घोंटने कटि बाँधी अविचार ।

आखिर कवि को प्राप्त यही सत्कार
सोच-सोच देश-विदेशों में फैला फूत्कार
सामंतों ने सद‍्गुण के जो साकार
भेजा नृप-सम्मुख पत्रों को यथा प्रकार ।

" खट्टे कर धनपति के दांत
प्राप्त किया रत्नों का भार ।
अष्टदिगों में आक्रन्दन भर
कंपाया भारत बहु बार ।
हिंदु मूर्ति-गर्भों में खड्ग फिराकर
भग्न किये मंदिर गृह-द्वार ।
ब्राह्मण के पूत गृहों में घुस कर
सुना दिया इस्लामी मत-सार ।

एवं विध श्वेत शुभ्र तव गौरव का गान
अमर किया जिसने सचमुच वह क्या गुणहीन ?
स्वर्ण-नीर में तैराना उस को क्या पाप ?
निराशा-जलधि डुबोओ प्रभु ! क्या यह पुण्य "।

" मोहम्मद पैगंबर की पाक कब्र पर मक्का में तुम ने
श्वेत कीर्ति का नीर घोल कर लगा दिया चूना तुम ने
अल्लाह के हे महा भक्त ! क्यों कुपित बने, सोचो कवि की बाधा।
उनका ऋण कर लो चुकता वह क्या हुक्का-खर्च से ज्यादा ?"

" कवि शाश्वत इस वसुधा में
वे रवि-तारक के साथ रहेंगे
कविता के पति फिर आप
अपयश जीवन के साथ सहेंगे ?"

" शत शत कवियों के गानों से
निनदित तव गोष्ठी की शान
काफ़िर की रक्त नदी में
तिरती तव तलवार की धार
हींस हींस अरि वर्गों पर आ
पडते नव अश्वों की धूम
स्वर्ण-आसनों से सज्जित हो
अकड अकड चलते मदकरियों की नाज

देख प्रभो ! मस्ती में कभी कभी हम झूमें ।
यवन-राज्य शोभा कह कर कभी-कभी हम फूले ।
ललित कला शोभित तव राज्य-रमा में नाथ !
नहीं पुण्य होगा कवि के उष्ण अश्रु का पात ।"

"शाहनामा" ग्रंथ-राज देखो नरनाथ !
अनगिन रत्नों का वह तो भंडार
फिर अनमन हो, यह क्यों उत्पात्—
षष्ठि सहस्र मुद्राओं की सोचो क्या बात !

"प्रभु ! तुम कला-पुजारी ही ठहरो
अपना यश कर से मत खो बैठो
काव्य-कन्यका बरसाती मणियों को मोटी
राज्य-रमा से वह क्या कुछ कम मीठी ?"

इन वचनों से भूपति का दिल पिघल उठा
क्रोध-च्युति से उसका मुख कुछ चमक उठा
समय बीतते वह पंडित गोष्ठी में आ बैठा
वर्षत्रय हर्षमोद में ही दिल उसका पैठा ।

गूँजा कवियों का कुहु कुहू रुत कंठ
निकल पडा मृद भावों का मधुस्रोत
उसका रस-स्वादन कर विद्वज्जन बृंद
आलोचन करते थे स्वर्थ-चित्त को छोड ।

किसी कवीश्वर की कविता से पुलकित
मुट्ठी-भर मोती दे डाले
किसी विबुध का आलोचन पढ
नव दुकूल तन पर उढा दिये
किसी गवैये का गाना सुन
मुंह मांगी मणियों का ढेर लगाया
किसी नटी के लास्य से हर्षित
आंचल भर रत्नों को बरसाया

साहित्यलोक में नव शोभा वह लाया
दान वलय निज पाणि-युगल में बांधा
कवियों की स्तुति-लहरी में सुख से झूला
फिरदौसी को फिर क्यों नितांत वह भूला।

वासर की पहली मृदु मुस्कानों में
अर्ध निमीलित रवि की सुन्दर किरणों में
प्राची दिग की खोली स्वर्णिल खिडकी में
विकसी जब शोभा कौओं के कैंकारों में।

शय्या से उतरा वह, दिव्याम्बर पहना,
पैरों में रत्न जटित जूता चमका
बडी धूम से नमाज करके जब लौटा
मसजिद के कुड्य भाग पर बस आँख जरा अटकी।

" कृति ने क्रूर व्याघ्र सम दृढता मेरी हर ली
शेषित अस्थि पिंजडे में अटकी यह प्राण कली भोली
जीवन्मृत इस वृद्ध गात्र को भूप खड्ग चख लेगा क्या
स्वाद मिलेगा इससे उसका परिभव ताप मिटेगा क्या ?

" रत्नों की लालच से जलनिधि के बीच
लगा लगा कर गोता मैं थका पडा
पाया मैं ने आखिर क्या भाग्य विहीन
मुँह खोल मुझे खाने वह आज खडा ।"

मानों एक एक अक्षर में कवि के
बिखरे अश्रुगुच्छ के बिंदु बडे अटके
देख देख नरपति का दिल विह्वल हो काँपा
मानों वनजा कर में लगा पवन का झोंका ।

फारसीक कवि को देने का वचन किया जितना धन
बाँध बोरियों में लादा प्रभुने उष्ट्रों पर वह ऋण
भेजा कुछ वीर भटों को सथ उसी के संरक्षण में
जिसे देख विद्वज्जन के फूटी शोभा मृदु आनन में ।

एक वर्ष से बेचारे कवि की क्या हालत हे देव !
दिन पर दिन बिगड रही है जरामयों से देह
तडप रहे वे गरीब-घर के झंझटों के बीच
सयानी हो निजपुत्र कलप रही है एक ओर ।

साथ साथ सेवा में लग हुआ जिसका ध्यान,
प्यारी वह पत्नी दर्दभरी विलप रही सिर पीट
हाय ! कवीश्वर चले गये तब दुनियाँ को छोड ।

कविवर का मृतगात्र गया जब श्मशान की ओर
राजा का भेजा धन आया तब निज गृह की ओर
पल-पल के व्यवधि भेद में क्या होता हे देव !
कौन जानता विश्व-नाट्य के कर्ता ! तब मन का भाव।

"शर-सम इस धन ने पितृ देव को नोच नोच कर खा डाला
अगर स्पर्श कर लूँ तब वे स्वर्ग लोक में अश्रु बहाये,
वृद्ध पिता पर करुण कर तव भूपति ने पुण्य गढाया
शत शत कह दो नमस्कार" कहते बेटी रो रोकर चिल्लाई ।

दैन्य भरे कवि-पुत्री के वचनो में
कुल गिरि के पत्थर भी पिघल पडे
नव यौवन की मूर्ति उसी के स्वर में
पीयूषसिक्त मधु कण भी टपक पडे ।

कहा भटों ने गज़नी जाकर प्रभुवर ! 'यह धन लौटा लो
कविवर अपनी जीवन-लीला समाप्त करके चले गये'
सुनते प्रभु की हृदय-कली पर मानों वज्र-प्रहार हुआ
अपनी अविवेक, कृतघ्नता पर पश्चात्ताप बडा हुआ ।

मन मसोस कर स्थगित किया तत्क्षण दरबार
सन्नाटे में आ चला गया निज शयनागार
दरवाजे सब बंद किये लेते दुख-संसार
रोया सिसक सिसक अपने को कर धिक्कार।

रे कृतघ्न ! अब भव-सागर में दम घुटते घुटते जीओ
उस मान्य पुरुष फिरदौसी से स्वर्ग-सुखों का भाग न लेलो
अफघन वसुधा काव्य-सुधा में जिसने सींच सजाई
उसके सिर अंगार चढाके जीवच्छव-सा जीओ।

गला न्याय का घोंट तुम्हीं ने प्रलय-नाट्य की लीला खेली
सम-भूपति मंडल-सम्मुख अपना सिर नीचा कर डालो
संपद्-पौरुष-सुषमा शोभित निज कुल में अब दाग लगा लो
अमर काव्य की आकृति में यह अप-यश सिर पर लेलो।

रस-स्रवंती कविता वर्षक कवियों की फिर क्या कमती
वचन वचन में प्रतिभा दर्शक विद्वानों की क्या कमती
फिर भी उस फिरदौसी की सी रस-स्फूर्ति उनमें क्या दिखती
लात मार फेंकी मैं ने मणि माला अब वह क्यों मिलती !

एवं पश्चात्ताप-तप्त वह म्लेच्छों का राजा
कविवर के ऋण से पाने कुछ छुटकारा
तूस नगर की पुण्य भूमि में एक धर्म-शाला
बना सका, उनके नाम से थी वह स्मृतिशाला।

जीर्ण-शीर्णता उस शाला की आज हमें है दिखती
देख-देख कर फ़ारसीक की आँख अचानक रोती
वहाँ नृपति के चिरतर अपयश का लेप मिलेगा ही
कविवर की अमर-कीर्ति-लतिका का लवहास खिलेगा ही ।

कहते, गजनी-पुर की अब भी गलियों में नृप कङ्काल
प्राण सहित हो निशा समय में फिरता कर आर्त-निनाद
सत्य यही इस पृथ्वी पर का मनुज मिटे फिर पाप मिटे क्यों ?
भीकर दंड के बिना भोग के आत्म-शांति की तृप्ति मिले क्यों ?